समानुभूति

२४ जून, २०२२

अमी बन्सल और गरिमा बोरवणकर द्वारा लिखित व्याख्या

भाग ३

गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा २४ जून, २०२२ को प्रदान किए गए सद्गुण, समानुभूति पर व्याख्या लिखने के इस अद्भुत कार्य को करते हुए हमें यह समझ में आने लगा है कि यदि हम इस सद्गुण पर अन्वेषण करते रहें तो जिस तरह समानुभूति के सकारात्मक प्रभाव अक्षय हैं, उसी तरह इसकी समझ की गहराई भी अनन्त है। जैसे-जैसे हम इसके बारे में अधिकाधिक सीखते जा रहे हैं, इसकी और अधिक खोज करते जा रहे हैं, हम देख रहे हैं कि इस सद्गुण के अन्वेषण से प्राप्त समझ को अपने कार्यों में उतारने के लिए हमारे पास अवसर भी भरपूर हैं।

इस व्याख्या के भाग १ और २ में हमने सीखा कि समानुभूति का आधार यह ज्ञान है कि इस ब्रह्माण्ड के समस्त जड़-चेतन में एक ही आत्मा का वास है। हम अन्य लोगों, प्राणियों और अपने आस-पास की वस्तुओं के साथ अपने ऐक्य को जितना अधिक देख पाते हैं, उतना ही अधिक हम यह समझ सकते हैं कि इस बात का क्या अर्थ है कि यह सम्पूर्ण संसार आपस में जुड़ा हुआ है। हमने इस पर चिन्तन-मनन भी किया कि समानुभूति अन्तर से प्रस्फुटित हो इसके लिए यह अनिवार्य है कि मन के सन्तुलन को विकसित किया जाए और शमस्थिति का निर्माण किया जाए।

समानुभूति क्या है, इस विषय पर जैसे-जैसे हम अपने अध्ययन को आगे बढ़ाते जाते हैं, वैसे-वैसे हम देख सकते हैं कि किस प्रकार इस सद्गुण का हरेक पहलू एक-दूसरे पर आधारित है और ये सभी पहलू एक-साथ मिलकर हमारी मदद करते हैं ताकि हम इस सद्गुण के विषय में अधिक विस्तृत समझ प्राप्त करते हुए इसे और भी पूर्णता से समझने के निकट आ सकें। हम दोनों, यानी अमी और गरिमा के लिए, निरन्तर चलने वाली खोज की इस प्रक्रिया से यह विचार आया कि यह तो भारत के किसी मन्दिर में जाने जैसा है। सर्वप्रथम, जब हम भगवान के दर्शन के लिए मन्दिर में प्रवेश करते हैं तो हम उनके स्वरूप का कोई एक भाग ही देख पाते हैं—उनका एक हाथ या उनके चरण या शायद उनके मुखमण्डल की एक झलक। मात्र इतने ही दर्शन पर्याप्त होते हैं हमारे हृदय को भक्ति से और भगवान के पूर्ण स्वरूप के दर्शन की ललक से भर देने के लिए। जैसे-जैसे आप गर्भगृह के और निकट पहुँचते जाते हैं, आपकी उत्कण्ठा बढ़ती जाती है और फिर, आख़िरकार, वह क्षण आ ही

जाता है जब आप भगवान के पूर्ण व प्रत्यक्ष स्वरूप के समक्ष उपस्थित होते हैं। क्या होता है उस क्षण में? दर्शन—अन्तर में दिव्यता का बोध। भगवान के प्रकाश में पूर्ण रूप से तन्मय हो जाना, आपको चुम्बक की भाँति अपने अन्तर के मौन की ओर खींच लेता है; यह मौन जो इतना मधुर है, इतना उत्कृष्ट है कि आप बस उसी के साथ बने रहना चाहते हैं।

इसी प्रकार, जैसे-जैसे हम समानुभूति के प्रत्येक पहलू को अनावृत करते जाते हैं और उसके बारे में सीखते जाते हैं, जैसे-जैसे हम इसके सभी सूक्ष्म अर्थों का अध्ययन करने और उन्हें समझने का प्रयत्न करते जाते हैं, वैसे-वैसे हम इस सद्गुण के सम्पूर्ण वैभव की अनुभूति करने के अधिकाधिक निकट आते जाते हैं।

***

आइए, अब हम समानुभूति के चौथे पहलू को देखते हैं जिसका उल्लेख भाग १ में किया गया था।

समानुभूति समता या सादृश्य होने का बोध है जो गहन संवेदना या हमदर्दी, करुणा व समझ के भाव को जगाता है।

भाग १ में आपने जाना कि अंग्रेज़ी भाषा में समानुभूति के अर्थ से मिलता-जुलता शब्द है *empathy* [एम्पेथी] यानी 'गहन संवेदना' या 'हमदर्दी' या 'सहानुभूति'। व्याख्या के इस भाग में हम अधिक गहराई से खोज करेंगे कि 'गहन संवेदना' यानी 'सहानुभूति' वास्तव में क्या है, इसका उदय कहाँ से होता है और व्यवहार में उतारने पर इसका स्वरूप कैसा होता है। [इसे समझने के लिए हम इस वाक्य के पहले भाग के विषय में यानी 'समानुभूति का गहन संवेदना या सहानुभूति के साथ क्या सम्बन्ध है', इस बारे में अपनी समझ को और परिष्कृत करेंगे; व्याख्या के भाग ४ में हम करुणा और समझ को अधिक गहराई से जानेंगे।]

जब भी हम दोनों, इस व्याख्या की लेखिकाएँ ऐसी 'गहन संवेदना' के बारे में सोचते हैं जो समानुभूति से जुड़ी है तो हमें एक प्रसंग याद आ जाता है जो हमें एक बार एक वयोवृद्ध सिद्धयोगी ने सुनाया था। कई वर्षों पहले, १९७० के दशक की शुरुआत में, एक दिन वे गुरुदेव सिद्धपीठ के गुरुचौक में बैठी थीं, जब बाबा मुक्तानन्द दर्शन दे रहे थे। दर्शन की पंक्ति में एक महिला खड़ी थी जो पास ही के गाँव में रहती थी। बाबा जी के समक्ष पहुँचते ही वह महिला दबी आवाज़ में रोने लगी। बाबा जी ने मृदुलता से उससे पूछा कि क्या हुआ है। उसने बताया कि हाल ही में उसके इकलौते बेटे की मृत्यु हो गई है। यह बताते हुए उस महिला के आँसू रुक नहीं रहे थे; उसका दुःख शब्दों के परे था, पर वह उसके चेहरे के भावों में, उसके पूरे अस्तित्व में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था।

बाबा जी उस महिला का हाथ अपने हाथ में लिए, उसकी व्यथा को ध्यान से सुन रहे थे। जब वह बता रही थी, बाबा जी की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। बाबा जी वहाँ थे, पूरी तरह, उस माँ *के साथ,* उसकी वेदना के साथ। उनकी उपस्थिति, उनका प्रेम उस शोकाकुल माँ को ढाड़स बँधा रहा था, उसे सान्त्वना दे रहा था, उसके घावों पर लेप लगा रहा था। जो लोग वहाँ दर्शन के लिए उपस्थित थे, वे यह सब देखकर अत्यन्त द्रवित हो उठे।

***

अन्य कई सद्‌गुणों की ही तरह, संवेदनशीलता या सहानुभूति को बाहर से नहीं पाया जा सकता। यह हमारा अन्तर्जात स्वभाव है। फिर भी इस सद्‌गुण को अपने अन्दर खोजकर इसे प्रकट करने का प्रयत्न कभी-कभी बहुत कठिन व चिन्ताजनक लग सकता है।

हमने अपने श्रीगुरुओं से सीखा है कि जैसे-जैसे हम अपनी साधना में प्रगति करते जाते हैं और इस बारे में जागरूक होते जाते हैं कि हम क्या हैं और कौन हैं, तो हमारा सामना सद्‌गुणों के कोष और अवगुणों के कोष, दोनों से होता है। किसी विशिष्ट परिस्थिति में हम इनमें से किसी-न-किसी कोष की ओर आकृष्ट हो सकते हैं और यदि हम सजग नहीं हैं तो हमारी मनःस्थिति, हमारा दृष्टिकोण परिस्थिति के साथ-साथ बदलते रहेंगे। *आज मैं किस कोष से टकराऊँगा?* साधना में यह सवाल बार-बार उठता ही रहता है और इसी कारण यह आवश्यक है कि हम लगातार सामंजस्य बैठाएँ व पुनः-पुनः सामंजस्य बैठाते रहें, हम स्थिति का निरीक्षण कर उसे व्यवस्थित करें व पुनः-पुनः व्यवस्थित करते रहें ताकि हम यह सुनिश्चित कर सकें कि चाहे जिस भी कोष से हमारा सामना क्यों न हो, हम अपने अन्तर में सूक्ष्म सन्तुलन बनाए रखेंगे।

जो याद रखना महत्त्वपूर्ण है वह यह कि हमारे पास चुनाव करने का अवसर हमेशा होता है। जब हमारा सामना अवगुणों के कोष से हो, तब हम यह तय कर सकते हैं कि हमें उस कोष को खोलना है या नहीं। हम यह चुनाव कर सकते हैं कि हम अपने अवगुणों में लिप्त हों या नहीं, उन्हें अपने ऊपर हावी होने दें या नहीं, किसी भी परिस्थिति में क्रोध या भय या घमण्ड के स्थान से प्रत्युत्तर दें अथवा नहीं।

हम अवगुणों के शिकंजे से बचने और अपनी दिशा बदलकर उनसे दूर चले जाने की ताक़त व सूझ-बूझ का विकास कर सकते हैं। इस प्रकार जब हम अपनी दिशा बदल लेते हैं और उनसे दूर चले जाते हैं तो एक प्रकार से हम 'लेज़ी सुज़ेन' से नीचे उतर आते हैं। ['लेज़ी सुज़ेन' खाने की मेज़ पर लगाई गई गोल तश्तरी होती है जिसे घुमाया जा सकता है ताकि मेज़ के चारों ओर बैठे लोगों तक

खाना पहुँच सके।] दूसरे शब्दों में कहें तो हम उस तश्तरी से उतर जाते हैं जो हमारे अन्दर हमेशा घूमती रहती है और हमें बार-बार अवगुणों के हमारे कोष के समक्ष लाती रहती है।

हम यह निर्णय भी ले सकते हैं कि हम इन अवगुणों के साथ अपनी पहचान इतनी अधिक नहीं करेंगे—हम हताशा, अक्खड़पन और विरोध के भाव में यह नहीं सोचेंगे : *हाँ, मैं तो ऐसा ही हूँ। यही हूँ मैं। मैं तो एक गुस्सैल व्यक्ति ही हूँ।* ऐसे क्षणों में हमारा चुनाव सीधे-सीधे इस बात से जुड़ा होता है कि हमने अपनी साधना द्वारा अपने मन व अपने हृदय को अनुशासित करने के लिए किस प्रकार स्वप्रयत्न किया है।

सद्‌गुणों के कोष के साथ भी ऐसा ही है। अब, हो सकता है आप सोच रहे हों : *क्या सद्‌गुणों का भण्डार खोलना लाभप्रद नहीं है? क्या मुझे सद्‌गुणों को अंगीकार करने का प्रयास नहीं करना चाहिए?* निस्सन्देह, हम अपने श्रीगुरुओं से अपने अन्दर निहित सद्‌गुणों को पोषित करना सीखते हैं, क्योंकि ये हमारी साधना को उन्नत बनाते हैं और हमें साधना में अग्रसर करते हैं, साथ ही एक बेहतर इनसान बनने में हमारी मदद करते हैं। तथापि, जिस बात से हमें सतर्क रहना है, वह है इन सद्‌गुणों में आसक्त होना। जिस प्रकार हम अपनी पहचान अवगुणों के साथ कर सकते हैं, ठीक उसी प्रकार हम अपनी पहचान सद्‌गुणों के साथ भी कर सकते हैं। हो सकता है हम यह सोचने लगें, *मैं कितना दयालु हूँ। मैं कितना संवेदनशील हूँ। मैं एक करुणामय मनुष्य हूँ।* इस प्रकार, जब हम अपनी पहचान सद्‌गुणों से करते हैं, तब हम अपने आपको सीमित अहं के दायरे में खींच लाते हैं। ऐसे में हम सद्‌गुणों का उपयोग अपने अहंकार की ख़िदमत करने के लिए कर रहे होते हैं, अपने घमण्ड को बढ़ावा देने के साधन के रूप में हम उनका उपयोग कर रहे होते हैं। वास्तव में, सद्‌गुण कोई लेबल नहीं हैं जो हमें अपने ऊपर चिपकाने हैं या कोई पहचान नहीं है जिसके माध्यम से हमें ख़ुद को पहचानना है, बल्कि वे तो अपने कार्यों में उतारने के लिए हैं, वे यह बताते हैं कि हम कैसे व्यक्ति बनें। जो व्यक्ति संवेदनशील है, वह संवेदनशील *है;* संवेदनशीलता उसके व्यवहार में झलकती है। वह यहाँ-वहाँ बैठकर यह नहीं बताता फिरता कि वह कितना संवेदनशील है।

तो, हाँ, सद्‌गुणों का कोष खोलना हितकर है। परन्तु एक बार ऐसा कर लेने पर हमें सतर्क रहना होगा, इस बात के प्रति सजग रहना होगा कि हम उन सद्‌गुणों का सम्मान किस प्रकार करते हैं, किस प्रकार उनसे जुड़ते हैं और उनका उपयोग कैसे करते हैं। इसीलिए *सन्तुलन* ज़रूरी है, इसीलिए अपनी आत्मा में केन्द्रित बने रहना अनिवार्य है, इसीलिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि जिस भी चीज़ को हम *बुरा* या *अच्छा* मानते हों, वह हमें अपने मार्ग से भटका न दे। इसके बजाय, जब भी हमारा सामना सद्‌गुणों और अवगुणों के कोष से हो, तब हम अपने ज्ञान और विवेक-बुद्धि को उपयोग में ला सकते हैं। जैसे-जैसे हम यह समझते जाते हैं कि अवगुणों को दूसरों के विरुद्ध

उपयोग में नहीं लाना चाहिए, हम धीरे-धीरे उन्हें जड़ से उखाड़कर फेंक सकते हैं। और सद्‌गुणों को हम विशेषकर इसलिए विकसित करते हैं ताकि हम दूसरों की मदद करने के लिए उनका उपयोग कर सकें।

***

सिद्धयोग पथ पर अपने अध्ययन और अभ्यास द्वारा हमें बौद्धिक और आन्तरिक, दोनों ही स्तरों पर यह समझ प्राप्त होती है कि गहन संवेदनशीलता हममें कितने सहज रूप से है। यह देखना उपयोगी और दिलचस्प हो सकता है कि किस तरह पूरे विश्व द्वारा भी इस ज्ञान की पुष्टि की गई है। उदाहरण के लिए, हम विज्ञान को और इतिहास को देख सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने यह पाया है कि एक-दूसरे के मनोभावों को महसूस करने की हमारी क्षमता का सम्बन्ध मस्तिष्क की नसों की [तन्त्रिकी यानी न्यूरल] प्रतिक्रिया से है। ऐसे बहुत-से प्रमाण मिलते जा रहे हैं कि यह सम्बन्ध, मानव के रूप में हमारे क्रमिक विकास के इतिहास का भाग है और यह किसी न किसी रूप में अन्य बहुत-से पशुओं में भी मौजूद है। संवेदनशीलता का विकास कई प्रजातियों के अस्तित्व के बने रहने से जुड़ा है, क्योंकि इससे माता-पिता को अपनी सन्तान की ज़रूरतों के प्रति जागरूक रहने व उन्हें पूरा करने की प्रेरणा मिलती है।

सामूहिक स्तर पर, संवेदना को अभिव्यक्त करने से समस्त मानवजाति को स्पष्ट रूप से लाभ मिलता है। प्रागैतिहासिक काल [लिखित इतिहास के पूर्व का समय] से ही मानवों को इस बात की पहचान हो गई है कि एक-साथ रहने से, एक-दूसरे का ध्यान रखने से, और एक-दूसरे की मदद करने से सभी सुरक्षित और भयमुक्त रहते हैं। निश्चित ही इसी समझ के कारण पहले-पहल वे जनसमुदाय बने जो साथ मिलकर शिकार करते, साथ मिलकर अन्न उपजाते व उसे एकत्र करते और साथ मिलकर रहने की जगह बनाते। हमारा वर्तमान समाज यद्यपि बहुत विकसित हो गया है और बदल भी गया है, फिर भी यह उभरा इसी आदर्श से है कि जीवित रहने और अन्ततः फलने-फूलने हेतु एक-दूसरे को सहयोग करना आवश्यक है। जब हम एक-दूसरे के प्रति संवेदना व्यक्त करते हैं तो इससे हमें मदद मिलती है कि हम अपने विभिन्न समूहों और समुदायों में, अपने परिवार और मित्र-मण्डली में तथा अपने और भी विस्तृत समाज में एक-दूसरे का सहयोग कर सकें व आपस में सामंजस्य को पोषित कर सकें।

इसके अतिरिक्त, इनमें से अनेक समूहों की संरचना जिस प्रकार की गई होती है, वह सामूहिक स्तर पर समानुभूति के फलने-फूलने व एक-दूसरे के प्रति उसे व्यक्त करने में सैद्धान्तिक रूप से उपयुक्त है, चाहे हम उसे एक अकेले परिवार के रूप में देखें या एक पूरे समाज के रूप में। विशेष तौर पर,

इन समूहों में एक प्रकार का क्रम होता है, एक प्रकार की व्यवस्था होती है, इनमें श्रेणियाँ होती हैं या एक ओहदा होता है जो यह बताता है कि इस समूह में लोगों का क्या स्थान या पद है। भिन्न-भिन्न स्तरों पर कुलमाताएँ, कुलपिता होते हैं और नेतृत्व करने वाले प्रतिनिधि होते हैं। जब इस तरह की संरचना को स्वीकार किया जाता है व उसका सम्मान किया जाता है, और जब उन लोगों द्वारा उसका दुरुपयोग नहीं किया जाता जिन्हें अधिकारसहित भूमिकाएँ दी गई हों तो वह समूह कहीं अधिक सहजता से व प्रभावी ढंग से कार्य कर पाता है।

अतः सम्मान अकसर इन संरचनाओं का मूलभूत भाग है क्योंकि यह उनकी सफलता के लिए अत्यावश्यक है। लोग एक-दूसरे के लिए जिस भाषा का प्रयोग करते हैं और एक-दूसरे से जिस तरीक़े का व्यवहार करते हैं, उसमें हमें इस सम्मान का प्रमाण दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, कई संस्कृतियों में बड़े-बुज़ुर्गों को [या ऐसा कोई भी व्यक्ति जो आयु में अपने से बड़ा हो, उसे] विशिष्ट उपाधियों या नामों द्वारा सम्बोधित करने का रिवाज है। दक्षिण भारत में बोली जाने वाली कन्नड़ भाषा में बड़ी बहन को या कोई भी स्त्री जो आयु में आपसे बड़ी हो उसे 'अक्क' कहकर सम्बोधित किया जाता है। हिन्दी भाषा में अपने से बड़े लोगों के लिए व औपचारिक रूप से सम्बोधित करने के लिए आदरसूचक सम्बोधन 'जी' का प्रयोग किया जाता है जो कि जापानी भाषा के 'सान' *(san)* के समान ही है। फ्रेंच और स्पेनिश भाषाओं में औपचारिक सर्वनाम ['वू' *(vous)* फ्रेंन्च में और 'उस्टेड' *(usted)* स्पेनिश में] प्रयुक्त होते हैं, जब किसी ऐसे व्यक्ति को सम्बोधित किया जा रहा हो जो विशिष्ट सम्मान का अधिकारी हो, इसलिए कि, या तो वह सामाजिक या व्यावसायिक रूप से किसी विशेष पद पर आसीन हो, या बस इसलिए कि हो सकता है उस व्यक्ति से बात करने वाले की जान-पहचान अधिक न हो।

दूसरा उदाहरण है, शिक्षक और विद्यार्थी के बीच के सम्बन्ध का स्वरूप। यहाँ भी सम्मान अपेक्षित है, बल्कि सीखने की प्रक्रिया हो इसके लिए यह अनिवार्य है। विद्यार्थी को शिक्षक के ज्ञान और अधिकार का सम्मान करना ही चाहिए। और शिक्षक को भी विद्यार्थी का सम्मान करना चाहिए— उसकी विशिष्ट योग्यताओं का, उसकी पृष्ठभूमि का जिसके आधार पर वह सीख रहा है, उसकी ग्रहणशीलता का और उसकी विकासशील समझ का। मार्शल आर्ट्स् में विशेष तौर पर, सेन्सेई यानी शिक्षक स्पष्टता से विद्यार्थियों को यह सिखाता है कि उन्हें अपने शिक्षक का और एक-दूसरे का सम्मान कैसे करना है, उसे किस तरह प्रदर्शित करना है। और विश्वभर में उच्च शिक्षा देने वाले शिक्षण-संस्थानों में जब नए छात्र प्रवेश लेते हैं तब उन्हें प्रायः एक आदर्श के रूप में, जीवन के नैतिक मूल्य के रूप में सम्मान करना सिखाया जाता है। सम्मान की अवधारणा ने इनमें से कुछ विश्वविद्यालयों के नारों और सिद्धान्तों में भी अपनी जगह बना ली है। उदाहरण के लिए, राजधानी होनोलूलू के पड़ोस में, मानोआ स्थित हवाई का विश्वविद्यालय इस अभिवादन के साथ छात्रों का

स्वागत करता है—'वैलिना मानोआ' [*Welina Mānoa*], जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'मानोआ में आपका स्वागत है'। तथापि, यह विद्यालय इसका विस्तृत अर्थ बताता है जो है, 'मानोआ उसी तरह हमारा अभिवादन करता है जिस तरह हम मानोआ का अभिवादन करते हैं'। यह विद्यालय अपने छात्रों से यह आग्रह करता है कि वे प्रकृति के साथ, विशेष तौर पर उस भूमि के साथ सामंजस्य में रहें और परस्पर सम्मान के इस दृष्टिकोण को अंगीकार करें।

जो छात्र सम्मान करने का महत्त्व सीख जाते हैं, उन्हें मानो एक ताबीज़, एक लंगररूपी दृढ़ आधार, एक ठोस सहारा मिल जाता है जिससे वे अपनी शिक्षा पूरी कर लेने के लम्बे समय बाद तक भी मदद ले सकते हैं। वे सिखाए गए उन नारों और सिद्धान्तों को याद रखते हैं और जब वे किसी ऐसी परिस्थिति में होते हैं जिसमें यदि बस थोड़े और सम्मान के साथ पेश आने पर उस स्थिति को सुधारा जा सकता है तो हो सकता है कि उन नारों के शब्द उन छात्रों के लिए एक बार फिर जीवन्त हो उठें। इन लोगों के लिए सम्मान एक मार्गदर्शक सिद्धान्त बन जाता है, एक ऐसा सिद्धान्त जिस पर वे विश्वास कर सकें; यहाँ तक कि जो लोग अपने आपको 'आस्थावान' या 'आस्तिक' न भी मानते हों, वे भी इस सिद्धान्त का आश्रय ले सकते हैं और इसके समर्थन में खड़े हो सकते हैं।

यह दुर्भाग्य की बात है कि इस संसार में अकसर, बार-बार ऐसा होता है कि जो संरचनाएँ विभिन्न प्रकार के समूहों को परिभाषित व संचालित करती हैं, उनका दुरुपयोग किया जाता है, उनमें हेर-फेर किया जाता है और सत्ताधारियों की सनक या मनमर्ज़ी के अनुसार उन्हें बदल दिया जाता है। बात ऐसी है कि यदि इन संरचनाओं के मूल व तथाकथित उद्देश्य की पूर्ति की जाती है—जो है, सामाजिक व्यवस्था या क्रम को बनाए रखना—तो इससे, बड़े स्वाभाविक रूप से सम्मान की संस्कृति को बढ़ावा मिलता है। जब लोग एक-दूसरे के लिए सम्मान करने की आधार-रेखा को बनाए रखते हैं, जब वे यह समझते हैं कि सामने वाला व्यक्ति कौन है और उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, तब सामंजस्य स्थापित हो सकता है। और जब सामंजस्य का शासन होता है तो समानुभूति का सद्गुण फल-फूल पाता है।

जब लोगों को दूसरों की तुलना में अपनी स्थिति का लगातार आकलन करने की और बचाव करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती, तब वे देख पाते हैं कि दूसरे लोग कौन हैं और दूसरे भी उन्हें वास्तव में देख पाते हैं। तब, हर व्यक्ति अपने विशिष्ट तरीक़े से, समूह में अपनी विशिष्ट स्थिति या पद के अनुसार, अपने जीवन के विशिष्ट अनुभव और सहज रुझानों के अनुसार अपनी संवेदनशीलता का परिचय दे सकता है। माता-पिता द्वारा बच्चे के लिए व्यक्त की गई संवेदना, बच्चे द्वारा माता-पिता के लिए व्यक्त की गई संवेदना से भिन्न होगी। शिक्षक द्वारा अपने विद्यार्थी के लिए व्यक्त की गई संवेदना, विद्यार्थी द्वारा अपने सहपाठी के प्रति व्यक्त की जाने वाली संवेदना से अलग होगी।

वस्तुतः जब इन विभिन्न स्तरों पर सभी ओर संवेदनशीलता व्यक्त की जाती है, जब इस संसार की भिन्नताओं और विविधताओं में व्याप्त एकात्मता का अनुभव किया जाता है, तभी इसकी सामर्थ्य में एक निरालापन होता है। हमें, अमी और गरिमा, दोनों को बाबा मुक्तानन्द के उस प्रसंग का स्मरण हो आता है जिसमें बाबा जी उस महिला को दर्शन दे रहे थे जिसने अपने बेटे को खो दिया था और बाबा जी की आँखों से आँसू बह निकले थे। वे श्रीगुरु थे, सद्‌गुरु, जगद्‌गुरु थे, जो इतने प्रत्यक्ष रूप से इस दुःखी माँ की वेदना में सहभागी हो रहे थे। साथ ही, हम यह भी समझते हैं कि चूँकि श्रीगुरु के आँसू अमर्त्य लोक से आते हैं, मनोभावों के स्थान से नहीं, अतः उन आँसुओं में जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों को धो डालने की सामर्थ्य होती है—और इस प्रसंग में माँ और उसका बेटा, दोनों के कर्मों को।

इस व्याख्या के भाग ३ का समापन करते हुए हम चाहते हैं कि आप श्रीगुरुमाई के इन शब्दों के साथ बने रहें :

जब हम ब्रह्माण्ड के साथ तालमेल में होते हैं—
श्वास-प्रश्वास सहज हो जाता है,
जीवन लालित्यपूर्ण हो जाता है,
और हर कोई फलता-फूलता है।

क्रमशः...

© २०२२ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।